पुलिस सुधार में देरी

साभार: द हिन्दू
(04 अक्टूबर, 2017)

एन.के सिंह (सीबीआई के पूर्व संयुक्त निदेशक और जेडी (यू) के राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य)

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-II (शासन व्यवस्था) से संबंधित है।

वर्ष 2006 की सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों को लागू करने के लिए केवल मजबूत सार्वजनिक राय ही राजनीतिक वर्ग को स्थानांतरित कर सकती है।

भारतीय पुलिस फाउंडेशन का उद्घाटन 2015 में हुआ था ताकि पुलिस सुधारों (प्रकाश सिंह बनाम भारतीय संघ) पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों को लागू करने के लिए राज्य सरकारों पर दबाव बढ़ाया जा सके। वर्ष 2006 में अदालत ने उन सुधारों को लागू करने के लिए सात बाध्यकारी दिशा-निर्देश जारी किए थे। देखा जाए तो,वर्ष 1996 में प्रकाश सिंह और लेखक द्वारा दायर याचिका पर अपना फैसला देने के लिए अदालत को 10 साल का समय लग गये थे। निश्चित रूप से इस आदेश के आने से सभी खुश थे, क्योंकि इनके द्वारा किए गए सभी सबमिशन और कई अन्य राष्ट्रमंडल मानवाधिकार पहल, मानवाधिकार आयोग और रिबेरो समिति को स्वीकार कर लिया गया था। ग्यारह साल बीत चुके हैं, लेकिन राज्यों ने सुधारों को लागू करने के लिए केवल कुछ कठोर कदम उठाए हैं। 22 फरवरी को पुलिस फाउंडेशन के रूप में पुलिस रिफॉर्म डे द्वारा प्रति वर्ष बहुत आवश्यक सुधारों के प्रति जागरुकता पैदा करने के लिए मनाया जाता है।

पुलिस पर मजबूत पकड़ : सर्वविदित है कि पुलिस के कामकाजी वातावरण में सत्ताधारियों के प्रति वफादारी दिखाना कहीं अधिक जरूरी बन गया है, बनिस्बत कानून के प्रति एकनिष्ठ समर्पण रखने के। बजाय स्वयं को समाज की शांति और सुरक्षा के प्रति जवाबदेह सिद्ध करने के, पुलिस को बेहिचक प्रभाव और पैसे का मतलब साधते देखा जा सकता है। वर्ष 1861 के औपनिवेशिक पुलिस अधिनियम पर आधारित उसकी साख सामान्य नागरिकों के लोकतांत्रिक अधिकारों की उपेक्षा करने वाली, अपराध के आंकड़ों में हेराफेरी से अपनी कुशलता दिखाने वाली और शातिर अपराधियों से मिलीभगत वाली बन चुकी है। मानव अधिकारों का नियमित हनन करने के आरोपों से घिरी राज्य की इस निर्णायक एजेंसी की कार्यप्रणाली पर भ्रष्टाचार, संकीर्णता, मनमानी और क्रूरता के गहरे प्रश्नचिह्न हैं, जिनके समाधान में आंतरिक और बाह्य निगरानी की तमाम परतें अप्रभावी सिद्ध हुई हैं। जब एक नई सरकार चुनी जाती है, तो सबसे पहले वह (जैसा कि हाल में उत्तर प्रदेश में हुआ) राज्य के महानिदेशक (डीजीपी) का तबादला करती है। कुछ मामलों में तो यह मुख्य सचिवों के साथ भी हो रहा है। हांलाकि यहाँ कुछ अपवाद भी हैं, जिसमें बिहार के मुख्यमंत्री शामिल है, जिन्होंने न तो डीजीपी और न ही मुख्य सचिव, दोनों को अपने पूर्ववर्ती से विरासत में स्वीकार कर लिया। नतीजतन यह हुआ कि आज भी पुलिस पर लोग विश्वास नहीं करते हैं। वे सेना को पक्षपातपूर्ण, राजनीतिकरण के रूप में मानते हैं और आम तौर पर बहुत सक्षम नहीं होते हैं। सीबीआई द्वारा अपराधों की जांच के लिए लगातार मांग की तुलना में यह कुछ भी पुष्टि नहीं करता है, जिसे आपराधिक जांच विभागों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। यहां तक कि पत्रकार-कार्यकर्ता गौरी लंकेश के हालिया हत्या के मामले में भी सीबीआई जांच की मांग की गयी थी। और सीबीआई के बारे में क्या सही सोचा जा सकता है? कुछ ही साल पहले, सुप्रीम कोर्ट ने इसे 'पिंजरे का तोता' कहा था और अगर ध्यान दे तो इस पिंजरे का ताला समय के साथ-साथ बढता गया है। इसलिए अब अक्सर, सीबीआई जांच की मांग के साथ एक सुप्रीम कोर्ट-निगरानी जांच की भी मांग की जा रही है।

लोकपाल को लागू करना : यदि 2013 लोकपाल कानून को लागू कर दिया गया होता तो अभी जितनी समस्या मौजूद नहीं होती। लोकपाल में सीबीआई के काम की देखरेख करने की शक्ति होगी जो अदालत के बोझ को कम कर देगा। देखा जाये तो विपक्ष भी लोकपाल के बारे में उत्साहित नहीं है, क्योंकि वर्तमान राजनीतिक स्पेक्ट्रम के पक्ष में मौजूदा पुलिस प्रणाली के साथ जारी रखने में निहित स्वार्थ छिपा हुआ है।

अंततः, यह केवल मजबूत सार्वजनिक राय है जो राजनीतिक वर्ग को 2006 के निर्देशों को लागू करने के लिए स्थानांतरित कर सकती है। लेकिन पुलिस को सार्वजनिक विश्वास जीतने के लिए उदाहरण देना होगा। सुधार घर से ही शुरू होना चाहिए। चूंकि वर्तमान प्रणाली में राजनीतिक वर्ग का निहित स्वार्थ है, इसलिए कोई दबाव कार्य नहीं करेगा। हमें न्यायपालिका पर वापस जाना होगा, जो निष्पक्ष और पेशेवर पुलिस बल की मांग करता है, क्योंकि इसे पता है कि आपराधिक न्याय प्रणाली एक स्वस्थ पुलिस और जांच एजेंसी के बिना काम नहीं कर सकती है।

लोकतांत्रिक प्रणाली में राजनीतिक सत्ता का पूर्ण नकारना संभव है और न सर्वोच्च न्यायालय समेत पुलिस सुधार पर केंद्रित किसी भी आयोग या समिति का ऐसा मत रहा है। हमें समझना चाहिए कि लोकतांत्रिक पुलिस सुधार का क्रियाशील आधार सशक्त समाज ही हो सकता है, न कि समाज-निरपेक्ष पुलिस स्वायत्तता। एक संवेदी और लोकोन्मुख कानून-व्यवस्था, पुलिस के वर्तमान कामकाजी संबंधों के अंतर्गत ही, प्रशासनिक सुधारों के माध्यम से हासिल कर पाना संभव नहीं होगा। दुनिया का यही सबक है- मजबूत समाज अपनी पुलिस की इज्जत करता है और उसे सहयोग देता है; कमजोर समाज पुलिस को अविश्वास से देखता है और प्राय: उसे अपने विरोध में खड़ा पाता है।

क्यों जरूरी है पुलिस सुधार?

- आज आम आदमी को अपराधी से जितना डर लगता है, उतना ही डर पुलिस से भी है। उदाहरणार्थ किसी अपराधी गिरोह द्वारा हत्याएँ किये जाने अथवा किसी बड़े बैंक में डकैती डालने की घटना सामने आते ही लोग अपने घरों में दुबक जाते हैं, जब अपराधी अपना काम करके निकल जाते हैं तो लोग अपने घरों से निकलते हैं और पुलिस को देखते ही पुन: एक बार फिर अपने घरों के खिड़की, दरवाजे बंद कर लेते हैं। इन घटनाओं से तो यही प्रतीत होता है कि पुलिस ने जनता का सहयोगी होने के अपने दायित्व को भुला दिया है।
- जैसे-जैसे हमारी अर्थव्यवस्था विकसित हो रही है उसमें साइबर अपराध और धोखाधड़ी जैसे अपराधों की संख्या में भी वृद्धि होना स्वाभाविक है। भ्रष्टाचार आज हमारे देश में संक्रामक रोग की तरह फैल चुका है । जब भ्रष्टाचार हमारे जीवन का एक अंग बन गया हो तो फिर पुलिस व्यवस्था कैसे इससे अछूती रह सकती है। हमारी पुलिस व्यवस्था में सुधार कर उसे बदलते वक्त के अनुरूप बनाना होगा।
- वरिष्ठ पुलिस अधिकारी जिनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे पीड़ित लोगों को न्याय प्रदान करेंगे तथा उन्हें समाज विरोधी तत्वों से बचाएंगे। वरिष्ठ अधिकारी जो कि भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिये कृतसंकल्प हो, वह जैसे ही सुधारों की प्रक्रिया आरम्भ करता है उसका तबादला कर दिया जाता है। दरअसल, पुलिस व्यवस्था में सुधार के जो पहलू हम फिल्मों में देखते हैं, व्यवहारिक तौर पर सम्भव नहीं है।
- पुलिस व्यवस्था में बदलाव एक संगठन में लाए जाने वाले बदलावों की तर्ज पर ही लाया जा सकता है और कोई भी वरिष्ठ अधिकारी, अधिकारियों व कर्मचारियों की प्रवृत्ति में रातोंरात बदलाव नहीं ला सकता है। लेकिन तबादलों से तंग वरिष्ठ अधिकारी वर्ग अब तो जैसे सुधारों की प्रक्रिया से ही तौबा कर चुका है। पुलिस व्यवस्था में जड़ जमा चुकी इस विसंगति को बदलने के लिये पुलिस सुधार तो करना ही होगा।
- गौरतलब है कि अभी तक कोई ऐसा तरीका विकसित नहीं किया जा सका है जिससे अपराधी को सभ्य ढंग से अपराध कबूल करने के लिये प्रेरित किया जा सके और शायद कभी कर भी न पाएँ, इसलिये 'थर्ड डिग्री' का हम चाहे जितना विरोध करें, उसकी कुछ न कुछ जरूरत शायद हमेशा बनी रहेगी। लेकिन इस प्रक्रिया में कुछ निर्दोष व्यक्तियों के साथ ज्यादती होती है और हमारी पुलिस इतनी संवेदनशील नहीं है कि वह स्वयं को निर्दोष व्यक्तियों के दु:खदर्द से जोड़ सके।

क्या है 1977 का राष्ट्रीय पुलिस आयोग : जनता पार्टी की सरकार ने 14 मई, 1977 में सभी राज्यों में पुलिस सुधार के लिए आईएएस धर्मवीर की अध्यक्षता में राष्ट्रीय पुलिस आयोग का गठन किया गया था। फरवरी, 1979 और 1981 के बीच इस आयोग ने कुल आठ रिपोर्ट दी। इस आयोग ने कई महत्वपूर्ण सिफारिशें कीं। इनमें ये खास सिफारिशें भी हैं:

1. किसी राज्य के पुलिस प्रमुख का कार्यकाल एक निश्चित समय के लिए सुनिश्चित हो और कार्यात्मक स्वतंत्रता को प्रोत्साहन दिया जाये।
2. पुलिस के कामकाज में किसी प्रकार का बाहरी हस्तक्षेप न हो।
3. हर राज्य में पुलिस सुधार आयोग की स्थापना की जाये।

पद्मनाभैया कमेटी: (2000)

- जनवरी, 2000 में केंद्र सरकार ने पुलिस सुधार के लिए एक और समिति पद्मनाभैया का गठन किया। इसने अगस्त, 2000 में अपनी रिपोर्ट पेश की। इस समिति का कार्यदायित्व व्यापक था। इनमें अगली सहस्राब्दी में पुलिस के समक्ष चुनौतियों के आकलन सहित एक ऐसी जन-मित्रवत् पुलिस की संकल्पना पेश करनी थी जो उग्रवाद और आतंकवाद एवं संगठित अपराधों से प्रभावकारी रूप से निपटने में सक्षम हो। ऐसे रास्ते सुझाने थे जिससे पुलिस को एक पेशेवर और सक्षम बल बनाया जा सके। पहचान को एक ऐसा कवच पहनाने का सुझाव देना था जिससे राजनीतिक हस्तक्षेप पर विराम लग सके। अपने तमाम कार्यदायित्वों पर इस समिति ने कई अहम सुझाव दिए। इनमें प्रमुख सुझाव पुलिस कानून को बदले जाने संबंधी था।

पुलिस एक्ट ड्राफ्टिंग कमेटी (2005-2006)

- 2005 में सोली सोराबजी की अध्यक्षता में पुलिस एक्ट ड्राफ्टिंग कमेटी का गठन किया गया। सितंबर, 2005 में कमेटी ने बैठक शुरू की और अक्टूबर, 2006 में केंद्र सरकार के पास एक मॉडल पुलिस कानून बनाकर पेश किया। इस कमेटी के कार्यदायित्वों में पुलिस की बदलती भूमिका और जिम्मेदारियों के आलोक में एक नया कानून तैयार करना था।

प्रकाश सिंह बनाम भारत सरकार (2006-07)

- 1996 में दो पूर्व पुलिस महानिदेशकों ने सुप्रीम कोर्ट में एक जनहित याचिका दायर की। इस याचिका में उन्होंने मांग की कि केंद्र और राज्य सरकारों को उनके यहां पुलिस की खराब गुणवत्ता और प्रदर्शन को सुधारने का सुप्रीम कोर्ट निर्देश दे। करीब एक दशक तक लटके इस मसले पर सुप्रीम कोर्ट ने 2006 में केंद्र और राज्यों को सात अहम दिशा-निर्देश दिए। ये दिशा-निर्देश सभी के लिए बाध्यकारी थे। 2006 के अंत तक सभी राज्यों के द्वारा इस संबंध में उठाए गए कदमों से सुप्रीम कोर्ट को अवगत कराना था। ज्यादातर राज्यों ने कोर्ट से और समय की मांग की। कुछ ने इस फैसले की समीक्षा की मांग की। अदालत ने अपने निर्णय की समीक्षा से इन्कार करते हुए मार्च, 2007 तक इन दिशा-निर्देशों के अनुपालन का आदेश दिया।

संभावित प्रश्न

सत्ताधारियों ने पुलिसिया तंत्र को अपने प्रति इस कदर केंद्रित कर रखा है कि पुलिस के लिए हर समय अपनी जवाबदेही का ध्यान रखना मुश्किल होता जा रहा है। इस कथन के सन्दर्भ में बताये कि क्या वास्तव में देश की राज्य सरकारें पुलिस की कार्यशैली और राजनीतिक हस्तक्षेप से उसे अलग रखने के लिए प्रतिबद्ध है?

The ruling authorities have kept the police system in so much control that it is becoming difficult for them to take care of their accountability at all times. In the context of this statement tell that whether the state governments are commited in keeping them seperate from the functioning of the police and political interference? (200 words)